मित्रों को शक्तिशाली बनाए बिना अपने शत्रु को पूर्ण रूप से कुचल दिया हो।

आंग्ल-मराठा सम्बन्ध
(THE ANGLO-MARATHA RELATIONS)

प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध (First Anglo-Maratha War)

कारण (Causes)—प्रथम मराठा युद्ध 1775 ई. से 1782 ई. तक अंग्रेजों तथा मराठों के बीच लड़ा गया था। इस युद्ध के प्रमुख कारण ये थे कि 1772 ई. में पेशवा माधवराव का देहान्त हो गया था, अतः उसका छोटा भाई नारायणराव उत्तराधिकारी बना। परन्तु उसके चाचा रघुनाथराव (राघोवा जी) ने अगस्त, 1773 ई. में उसका वध करवा दिया तथा स्वयं सिंहासनासीन हो गया, परन्तु नाना फड़नवीस आदि अनेक मराठा सरदारों ने राघोवा को पेशवा स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। अतः उन्होंने 12 सदस्यों की एक समिति '**बारह भाई सभा**' बनायी और शासन संचालन प्रारम्भ किया। अप्रैल, 1774 ई. में नारायणराव की विधवा पत्नी से एक पुत्र पैदा हुआ। अतः मराठों ने इस पुत्र को माधवराव द्वितीय के नाम से अपना पेशवा स्वीकार किया। राघोवा अपने प्रयासों को असफल देखकर बम्बई की ओर भाग गया वहां इसने कम्पनी सरकार से सहायता की याचना की। अतः अंग्रेजों तथा राघोवा के बीच मार्च, 1775 ई. में '**सूरत की सन्धि**' हो गयी। अतः इस सन्धि के अनुसार अंग्रेजों

Scanned with CamScanner

ने राघोवा को पेशवा बनाने का आश्वासन दिया तथा राघोवा ने अंग्रेजों को सालसैट, बसीन आदि क्षेत्र देने का वचन दिया।

युद्ध की घटनाएं (Events of the War)

(1) **घरास का युद्ध**—राघोवा की सहायता के लिए बम्बई के गवर्नर ने कर्नल कीटिंग के सेनापतित्व में एक अंग्रेजी सेना पूना के विरुद्ध भेजी। राघोवा तथा अंग्रजों की सम्मिलित सेनाओं ने घरास नामक स्थान पर मराठों पर विजय प्राप्त की। दोनों ने आगे बढ़कर सालसैट पर अधिकार कर लिया।

(2) **पुरन्दर की सन्धि**—जब गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्ज को सूरत सन्धि का पता चला तो उसने इसे अस्वीकार कर दिया और बम्बई के गवर्नर से युद्ध रोकने के लिए कहा। दूसरी ओर, अपने प्रतिनिधि कर्नल अपटन को पूना दरबार में सन्धि के लिए भेजा। अतः दोनों पक्षों में एक सन्धि हो गयी, जो 'पुरन्दर की सन्धि' कहलायी। **इस सन्धि की शर्तें थीं :**

(i) सालसैट पर अंग्रेजों का ही अधिकार रहा।
(ii) अंग्रेजों ने राघोवा की सहायता न करने का वचन दिया।
(iii) पेशवा सरकार ने राघोवा को 25,000 रुपया मासिक वेतन देना स्वीकार किया।
(iv) **'बारह भाई सभा'** को पेशवा माधवराव द्वितीय की वैध संरक्षिका प्रतिनिधिमण्डल स्वीकार किया गया। पूना दरबार ने अंग्रेजी सेना के खर्च के बदले में 12 लाख रुपया देना भी स्वीकार किया।

लेकिन पुरन्दर की सन्धि को व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सका। इसका कारण था लन्दन स्थित कम्पनी के संचालकों द्वारा पुरन्दर सन्धि के स्थान पर सूरत सन्धि को अस्वीकृति देना।

(3) **बारगांव का सम्मेलन सन्धि**—अतः सूरत सन्धि स्वीकार किए जाने से युद्ध पुनः आरम्भ हो गया। पूना दरबार की मराठा सेना पूरी वीरता के साथ लड़ी। मराठों ने पूना से 20 मील दूरी तेली गांव नामक स्थान पर अंग्रेजों को बुरी तरह पराजित किया। अतः अंग्रेजों को सन्धि के लिए बाध्य होना पड़ा। **यह सन्धि 'बारगांव का सम्मेलन' के नाम से जानी जाती है।** इस सन्धि से यह निश्चित हुआ : (i) 1773 ई. के बाद मराठों के जिन प्रदेशों पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया है वे वापस मिल जाएंगे। (ii) बंगाल से आने वाली सेना को रोक दिया जाएगा। (iii) राघोवा तथा दो अंग्रेज अधिकारी मराठों के सुपुर्द कर दिए जाएंगे। (iv) मराठों को भड़ौंच से होने वाली आय का प्रतिशत दिया जाएगा।

(4) **हेस्टिंग्ज द्वारा बारगांव सम्मेलन अस्वीकार**—वास्तव में बारगांव सम्मेलन अंग्रेजों के लिए अपमानजनक था। अतः हेस्टिंग्ज ने उसे अस्वीकार कर दिया।

(5) **जनरल गोडार्ड का अभियान**—हेस्टिंग्ज ने तुरन्त जनरल गोडार्ड के नेतृत्व में एक सेना पूना पर आक्रमण हेतु भेज दी। यह सेना अपसिंचित मार्गों से होती हुई सूरत पहुंच गयी। 1780 ई. में इस सेना ने अहमदनगर पर अधिकार करने के उपरान्त बसीन पर विजय प्राप्त कर ली। जनरल गोडार्ड को बड़ौदा के शासक गायकवाड़ का भी समर्थन प्राप्त था। अब गोडार्ड ने पूना की ओर प्रस्थान किया, लेकिन इसी बीच मराठा (नाना फड़नवीस), निजाम तथा हैदरअली तीनों ने मिलकर युद्ध किया और अप्रैल 1781 ई. में अंग्रेजों को बुरी तरह पराजित कर दिया।

(6) **कैप्टन पोपहम की ग्वालियर विजय**—इस पराजय के बाद कैप्टन पोपहम के नेतृत्व में एक सेना कलकत्ता से भेजी गयी। इस सेना ने शीघ्र ही ग्वालियर पर अधिकार कर लिया।

Scanned with CamScanner

महादजी सिन्धिया की राजधानी ग्वालियर पर अधिकार करना अंग्रेजों की महान् सफलता थी। विवश होकर सिन्धिया ने अंग्रेजों से सन्धि कर ली।

सालाबाई की सन्धि
(TREATY OF SALABAI IN 1782)

17 मई, 1782 को ग्वालियर के समीप सालाबाई नामक स्थान पर मराठों और अंग्रेजों के बीच सालाबाई की सन्धि हुई। इस सन्धि की प्रमुख धाराएं निम्नलिखित थीं :

(1) माधवराव द्वितीय को मराठों का वैध पेशवा स्वीकार किया गया।

(2) राघोवा को तीन लाख रुपया पेंशन (वार्षिक) देना निश्चय करके अलग कर दिया गया।

(3) फतेसिंह गायकवाड़ को बड़ौदा का स्वतन्त्र शासक स्वीकार करके उसके सभी प्रदेश उसे दे दिए गए।

(4) सालसैट पर अंग्रेजों का अधिकार स्वीकार किया गया। अंग्रेजों द्वारा मराठों के विजित प्रदेश उन्हें वापस कर दिए। इस प्रकार सिन्धिया को यमुना के पश्चिम के प्रदेश प्राप्त हुए।

सन्धि का महत्व
(SIGNIFICANCE OF THE TREATY)

भारतीय इतिहास में सालाबाई की सन्धि का विशेष महत्व है। अनेक अंग्रेज विचारक इस सन्धि को अंग्रेजों की महान् सफलता बताते हैं। डॉ. वी. ए. स्मिथ के अनुसार, "**सालाबाई की सन्धि भारतीय इतिहास की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है क्योंकि इसके द्वारा आगामी बीस वर्षों तक के लिए शक्तिशाली मराठों के साथ शान्ति स्थापित हो गयी तथा यद्यपि कम्पनी को भारत में प्रभुतासम्पन्न सत्ता तो नहीं बनाया परन्तु उसने इसे एक नियन्त्रण शक्ति अवश्य बना दिया।**"

लेकिन अनेक भारतीय इतिहासकार इस मत से सहमत नहीं हैं वे इसे भारत में सर्वोच्च सत्ता बनाने की दिशा में इतना महत्वपूर्ण नहीं मानते। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "**इस सन्धि को भारतीय राजनीति में अंग्रेजों को एक महत्वपूर्ण नियन्त्रण शक्ति के रूप में स्थापित करने वाला मानना ऐतिहासिक तथ्यों की अपेक्षा कल्पना पर ही अधिक आधारित है।**"

निःसन्देह इस सन्धि ने कम्पनी को भारत में सर्वोच्च सत्ता बनाने में कोई विशेष योगदान नहीं दिया परन्तु फिर भी यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि यह सन्धि अंग्रेजों के लिए बहुत ही लाभकारी थी।

महादजी सिन्धिया (1727-1794)

Scanned with CamScanner

महादजी का व्यक्तिगत जीवन पवित्र था। वह धर्म एवं जाति की राजनीति में कभी नहीं उलझा। हिन्दू तथा मुसलमान एक समान उसका आदर करते थे। महादजी ने सभी जातियों व धर्मों के लोगों को अपने राज्य में नियुक्त किया। **महादजी हमेशा पेशवा परिवार के प्रति स्वामिभक्त रहा, किन्तु दुर्भाग्यवश नाना फड़नवीस उससे ईर्ष्या करते थे तथा इसी कारण उसे सदैव पूना से दूर ही रखते थे।** यदि नाना फड़नवीस ने महादजी की प्रारम्भ से ही सहायता की होती तो जो सफलता एवं शक्ति महादजी ने मराठों के लिए 1789 ई. में अर्जित की, उसमें वह बहुत पहले सफल हो गया होता। जिसने सम्भवतः मराठा इतिहास की दिशा ही बदल दी होती।

महादजी का जीवन एक लम्बा परिश्रमपूर्ण कठोर जीवन था। **उसके जीवन को चार भागों में बांटा जा सकता है** : प्रथम भाग में 1761 ई. तक वह अपने भाइयों की छत्र-छाया में रहा। द्वितीय भाग में उसने नाना फड़नवीस के साथ मिलकर प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध में अंग्रेजों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की। तीसरी भाग में उसने युद्ध और नीति में अनुभव प्राप्त किया। चौथे भाग में उसने एक राज्य का निर्माण किया जिसे वह अपने वंशजों के लिए छोड़ गया।[1]

महादजी एवं मुगल सम्राट—मुगल सम्राट शाहआलम से महादजी के मधुर सम्बन्ध थे, क्योंकि सालबाई की सन्धि के द्वारा अंग्रेजों ने मुगलों के मामले में हस्तक्षेप न करने का आश्वासन दिया था। मुगल सम्राट ने 1784 ई. में महादजी को **'वकील ए मुतलक'** की उपाधि प्रदान की तथा मुगल-प्रशासन के समस्त अधिकार भी उसे सौंप दिए। महादजी ने मुगलों के शत्रुओं का विनाश किया, किन्तु इससे उसे अत्यधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ी।

ग्वालियर एवं गोहद पर अधिकार—महादजी ने 27 जुलाई, 1783 ई. को ग्वालियर पर आक्रमण किया व उस पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त की। तत्पश्चात् 26 फरवरी, 1784 ई. के उसने गोहद का आक्रमण करके उस पर भी अधिकार कर लिया।

राजपूतों से युद्ध—जयपुर के शासक सवाई जयसिंह की 1743 ई. में मृत्यु हो जाने पर उसके पुत्रों में संघर्ष हुआ। मराठों ने माधोसिंह की सहायता की तथा राजा बनने के पश्चात् उसने मराठों को चौथ देने का आश्वासन दिया, किन्तु 1786 ई. तक उसने ऐसा नहीं किया। अतः महादजी ने माधोसिंह को चेतावनी दी, किन्तु उसने फिर भी चौथ नहीं दी। अतः महादजी ने माधोसिंह पर आक्रमण किया, दोनों के मध्य 28 जुलाई, 1787 ई. को 'लाल सोट का युद्ध' हुआ, किन्तु यह युद्ध अनिर्णीत ही समाप्त हो गया।

महादजी ने अपनी स्थिति में सुधार करने के पश्चात् पुनः माधोसिंह पर आक्रमण किया। यह युद्ध 20 जून, 1790 ई. को पाटन नामक स्थान पर हुआ। इस युद्ध में माधोसिंह का साथ जोधपुर के शासक ने दिया। दोनों सेनाओं के मध्य हुए घमासान युद्ध में, अन्ततः महादजी की विजय हुई। **तत्पश्चात् महादजी ने जोधपुर के शासक विजयसिंह को सबक सिखाने के लिए जोधपुर की ओर प्रस्थान किया।** दोनों सेनाओं के मध्य मेड़ता नामक स्थान पर 10 सितम्बर, 1790 को युद्ध हुआ। जिसमें विजयसिंह परास्त हुआ। इस युद्ध से महादजी को अत्यधिक लाभ हुआ। उसे न केवल सांभर व अजमेर प्राप्त हुए वरन् विजयसिंह से उसने 60 लाख रुपए भी वसूल किए।

इस प्रकार महादजी उत्तर भारत में अपना प्रभाव स्थापित करने में सफल रहा। 1792 ई. में वह पूना गया जहां वह नाना फड़नवीस से अपने सम्बन्ध सुधारना चाहता था, किन्तु

1 महाजन, **आधुनिक भारत का इतिहास**, पृ. 144.

Scanned with CamScanner

अपने उद्देश्य में वह सफल न हो सका 1793 ई. में वह बीमार हो गया व 12 फरवरी, 1794 ई. में उसकी पूना में ही मृत्यु हो गई।

उसकी मृत्यु पर मालेसन ने लिखा, "महादजी सिन्धिया की मृत्यु से मराठों का सबसे योग्य योद्धा, अत्यन्त दूरदर्शी शासक खो गया। जीवन में उसके दो मुख्य उद्देश्य थे, प्रथम तो एक राज्य स्थापित करना और दूसरा अंग्रेजों से एक साम्राज्य स्थापित करने में होड़ लगाना इन दोनों में ही उसे किसी हद तक सफलता प्राप्त हुई। उसके द्वारा स्थापित राज्य आज भी वर्तमान है और लेक और वेलेजली ने आठ वर्ष बाद इसकी बनाई सेना का जो संहार किया उसका मुख्य कारण महादजी की छत्रछाया उठ जाना था। काश, वह थोड़े दिन और जीता तो उसने टीपू की घुड़सवार सेना और उसके फ्रांसीसी सिपाही, निजाम का शक्तिशाली तोपखाना, राजपूतों की सारी शक्ति, और पूना, इन्दौर, बड़ौदा और नागपुर से मराठों के प्रभाव क्षेत्र के सारे हथियार उठाने वाले सिपाहियों को एक ध्वज के नीचे एकत्रित कर दिया होता। यद्यपि शक्ति का पूर्व निर्णय नहीं हो पाता, किन्तु फिर भी संयुक्त भारतवर्ष और अंग्रेजों के बीच मुख्य समस्या का निर्णय तो हो ही जाता। अस्तु जो भी हो मृत्यु ने इसका निर्णय कर दिया और उसके बाद जो भाग्यहीन निर्णय होना था, केवल थोड़े समय की बात रह गई।"

यदुनाथ सरकार के मतानुसार, "महादजी सिन्धिया एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व के रूप में उत्तरी भारतवर्ष के इतिहास में एक भीमकाय व्यक्ति की तरह छाया रहा। उसके साधन त्रुटिपूर्ण थे, उसके साथियों और प्रतिनिधियों ने उससे बहुधा धोखा किया और उसे अनेक चिन्ताजनक जटिल समस्याओं से निपटना पड़ा। जेम्स अण्डरसन और विलियम पामर जैसे रैजीडैन्टों ने उसके पतन के विषय में भविष्यवाणी की थी, किन्तु अन्त में उसने सब पर विजय पाई। आधुनिक राष्ट्रवादी भले ही इसे भ्रम कहे, किन्तु धर्म उसके जीवन का प्राण था। हम इस शक्तिशाली अत्यन्त व्यस्त व्यक्ति में, जबकि यह सांसारिक रूप से प्रतिष्ठा के शिखर पर था, प्रगाढ़ पारिवारिक प्रेम, स्वाभाविक नम्रता तथा आदरणीय व्यक्तियों के प्रति आदर और सम्मान पाते हैं।"

नाना फड़नवीस (1742-1800 ई.)
(NANA PHADNAVIS)

नाना फड़नवीस का जन्म 12 फरवरी, 1742 ई. को महाराष्ट्र के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उसका वास्तविक नाम बालाजी था। पेशवा माधव राव प्रथम ने नाना को **'फड़नवीस'**[1] नियुक्त किया था।

नाना का कद ऊंचा, शरीर दुबल पतला तथा रंग कुछ काला ही था। चेहरे पर गम्भीरता छाई रहती थी। हंसना या मुस्कराना तो शायद उनके स्वभाव के प्रतिकूल ही था। उनकी आंखें पैनी तथा सदा चारों ओर घूमती रहती थीं। उनके सामने आते ही उनके प्रति लोगों में आदर उत्पन्न होता था, साथ ही आतंक भी छा जाता था।

निर्बल होने के कारण वे अधिक शारीरिक श्रम नहीं कर सकते थे। उसके नाजुक मिजाज के सम्बन्ध में महाराष्ट्र में एक लोक-वार्ता प्रसिद्ध है। कहते हैं कि नाना जिस हाथी पर सवार होते थे, उसके पैरों के नीचे अगर संयोगवश इलायची आ जाती तो ऊपर नाना को छींक आ जाती और अगर पैरों के नीचे लौंग आ जाती तो नाना के सिर में दर्द शुरू हो जाता।

1 पेशवा के आय-व्यय का हिसाब रखने वाला।

Scanned with CamScanner

इस आख्यायिका में अतिशयोक्ति तो है ही, पर इसमें नाना के स्वास्थ्य की नजाकत पर प्रकाश पड़ता है। इसी कारण उन्हें युद्धों में नहीं भेजा जाता था।

नाना का रहन-सहन अत्यन्त सादा था। वे तड़क-भड़क पसन्द नहीं करते थे। सादी वेशभूषा, सादा भोजन तथा सीमित आवश्यकताएं ही उनके जीवन का आधार थीं। वे प्रत्येक कार्य को नियमपूर्वक और निश्चित समय पर करते थे। **साधारण से साधारण कार्य को भी वे उसी सावधानी से करते थे जिससे वे राज्य के महत्वपूर्ण कार्य किया करते थे।**

वे प्रतिदिन सूर्योदय के एक घण्टा पूर्व उठते थे। प्रातःकालीन कर्तव्यों के उपरान्त वे स्नान कर दो घण्टे तक पूजा किया करते थे। इसके बाद वे विद्वान लोगों, शास्त्री और पण्डितों से मिलते थे। वे इनका बड़ा आदर करते थे तथा धन, वस्त्र, आदि देकर उनका सत्कार करते थे। इसके बाद वे पालकी में बैठकर देव-दर्शन के लिए अपने बेलवाग के मन्दिर जाते थे। फिर नगर के सम्वाददाता तथा गुप्तचर उनके सामने उपस्थित होकर नगर की प्रमुख घटनाओं की जानकारी देते थे। इसी समय नाना बाजार के दैनिक भावों की सूचना प्राप्त करते थे। अगर किसी वस्तु के भाव में अधिक घटा-बढ़ी होती तो उसके कारणों पर भी विचार होता था। **बाजार-भाव की ओर उनका विशेष ध्यान रहता था।**

दोपहर को बारह बजे वे भोजन करते थे। तदुपरान्त थोड़ा विश्राम कर वे राज्य के कार्यों को करते थे। सूर्यास्त के पूर्व वे कार्यालय से बाहर निकलते। थोड़ा विश्राम करने के बाद देव-दर्शन करने मन्दिर जाते थे। अगर दरबार हो तो उसमें उपस्थित होते थे। **सायंकाल में वे अपने विश्वस्त कर्मचारियों से मिलते थे।** उनसे वार्तालाप कर विभिन्न घटनाओं तथा परिस्थितियों की नवीन जानकारी प्राप्त करते थे। फिर सायं-संध्या कर वे स्तोत्र पाठ करते थे। भोजनोपरान्त मध्यरात्रि तक वे देश के विभिन्न भागों से आए हुए गुप्तचरों से मिलते या उनके द्वारा भेजे हुए संवादों को पढ़ते।[1]

राजनीतिक विरोधियों के प्रति नाना का व्यवहार अत्यन्त कठोरता का रहता था। अपने विरोधियों को कुचल डालना ही वे सर्वोत्तम नीति मानते थे। ऐसे भी कई अवसर आए जब नाना अगर उदारता, क्षमाशीलता और दया का व्यवहार करते तो वे अपने विरोधियों को अपने सहायक बना सकते थे। पर राजनीतिक उदारता को वे निर्बलता समझते थे। यह सत्य है कि उन्होंने अपने किसी राजनीतिक विरोधी को कभी मृत्यु-दण्ड नहीं दिया और न किसी की हत्या करने का षड्यन्त्र ही रचा। उन्होंने अपने विरोधियों को लम्बी अवधि तक बन्दीवास में ही रखा। अगर कभी इनमें से किसी को स्वतन्त्र भी किया तो वह भी उन्होंने अपने किसी राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही किया। बन्दी अवस्था में नाना ने अपने विरोधियों के साथ जो कठोरता का व्यवहार किया वह किसी भी दृष्टि से समर्थन योग्य नहीं है। इसी कारण उनके अनेक विरोधियों की कारावास में ही मृत्यु हो गई थी।[2]

नाना फड़नवीस के व्यक्तित्व की तुलना एक वटवृक्ष से की जा सकती है जिसकी सुदृढ़ता किसी भी प्रबल झंझावात को चुनौती देने की क्षमता रखती है तथा जिसकी विशाल और सघन छाया में लोग विश्रान्ति, शान्ति और सुख प्राप्त कर सकते हैं, पर जो अपने आस-पास किसी भी अन्य वृक्ष को पनपने नहीं देता। नाना का चरित्र भी ठीक इसी प्रकार का था। उन्होंने अपने जीवन-काल में अनेक प्रबल बबंडरों का दृढ़ता तथा आत्म-विश्वास के साथ सामना किया। उनके उथल-पुथलमय तथा तूफानी जीवन में कभी कोई परिस्थिति ऐसी

1 हर्डीकर, **नाना फड़नवीस**, पृ. 319.

2 हर्डीकर, **नाना फड़नवीस** पृ. 318.

Scanned with CamScanner

उत्पन्न नहीं हुई जिसने उन्हें हताश कर दिया हो अथवा जिसने उनके आत्म-विश्वास को निर्बल और असहाय बना दिया हो।[1]

नाना के समय में भारतीय समाज मनसबदारी या सामन्तशाही व्यवस्था से गुजर रहा था। **व्यक्तिगत स्वार्थ वंश-परम्परागत बन चुके थे।** राजाओं की गद्दियां तो वंश-परम्परागत थीं ही, पर साथ ही मन्त्रियों के पद भी वंश-परम्परागत बन चुके थे। इतना ही नहीं शासन के उच्चपद भी वंशीय अधिकारों की वस्तु हो गए थे। तात्पर्य यह है कि नाना जिस व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते थे वह सामन्तशाही व्यवस्था प्रायः अपने अन्तिम रूप पर पहुंच चुकी थी। **नाना, किसी नवयुग के सन्देशवाहक के रूप में नहीं वरन् एक लड़खड़ाती हुई सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था के रक्षक के रूप में ही इतिहास के रंगमंच पर प्रकट हुए थे।**

इस पृष्ठभूमि के होते हुए भी जब हम नाना के चरित्र पर दृष्टिपात करते हैं तो उनके चरित्र में कुछ प्रगतिशील तत्व भी हमारे सामने आए बिना न रहेंगे। उस समय देश में राजनीतिक एकता की भावना विकसित नहीं हो पाई थी। **समस्त देश के एक राष्ट्र होने की कल्पना का पूर्ण रूप से उदय नहीं हो पाया था।** नाना के लिए महाराष्ट्र ही उनका देश तथा उनका राष्ट्र था। फिर भी उन्होंने अपने राजनीतिक दृष्टिकोण को व्यापक बनाया था तथा उन्होंने अंग्रेजों की शक्ति को इस देश से मिटा देने के लिए हैदरअली, निजाम, मुगल बादशाह तथा देश के अन्य अनेक स्वतन्त्र शासकों का एक संघ निर्माण करने का प्रयत्न किया था।[2]

पेशवा माधवराव प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई नारायण पेशवा बना जिसका उसके चाचा राघोवा द्वारा घोर विरोध किया गया। राघोवा ने नारायणराव की 1773 ई. में हत्या कर दी व स्वयं को पेशवा घोषित किया। इस समय नाना ने 'बारामाई समिति' की स्थापना की व शासन प्रबन्ध अपने हाथों में ले लिया तथा यह घोषणा की कि नारायणराव की गर्भवती पत्नी से उत्पन्न पुत्र को पेशवा बनाया जाएगा। अतः 1774 ई. में माधवराव द्वितीय के नाम से यह पुत्र पेशवा घोषित किया गया।

मैसूर से सम्बन्ध—नाना ने टीपू के विरुद्ध अंग्रेजों की सहायता की थी, अतः टीपू ने मराठों पर आक्रमण किया व अनेक स्थानों पर अधिकार कर लिया। नाना के द्वारा टीपू के विरुद्ध अंग्रेजों की सहायता करना नाना की एक भूल थी क्योंकि बाद में जब अंग्रेजों व मराठों के मध्य युद्ध हुए, तो टीपू ने उनकी सहायता नहीं की।

मराठा संघ

दुर्भाग्य से नाना का काल मराठा राज्य का पतन का काल था। इस समय तक पतन के लिए आवश्यक सभी परिस्थितियों का निर्माण हो चुका था। राज्य के आधार स्तम्भ मराठा सरदार और राजनीतिज्ञ सिद्धान्त और आदर्शहीन बन गए थे। राज्यहित की भावना की प्रखरता नष्ट हो चुकी थी तथा उसका स्थान व्यक्ति-हित और स्वार्थ की भावना ने ले लिया था। परिणामस्वरूप राज्य के जागीरदारों, सरदारों, अधिकारियों, आदि के स्वार्थ आपस में टकराने लगे थे तथा

बार नाना अपनी चातुर्य से राज्य के इन संघर्षरत सरदारों तथा वीर योद्धाओं का उपयोग कर राज्य पर आए हुए भीतरी और बाहरी संकटों का निवारण करने में सफल हुए थे। राज्य को सुदृढ़, स्थाई और प्रगतिगामी बनाने में वे भले ही सफल न हुए हों पर वे उसे नष्ट होने से बचाने में अवश्य सफल हुए थे।[1]

नाना के समय तक मराठा साम्राज्य का प्रभाव क्षेत्र, दिल्ली से तुंगभद्रा नदी तक तथा बंगाल की सीमा से लेकर गुजरात तक विस्तृत हो चुका था। साथ ही देश के अन्य शासकों से सन्धियां हो चुकी थीं। इसके कारण लूट से धन प्राप्त करने का मार्ग बन्द सा हो गया था। अब तो केवल विभिन्न कर ही राज्य की आय का एक मात्र साधन रह गया था। **करों द्वारा इतना धन नहीं मिलता था कि जिससे शासन तथा आए दिन होने वाले युद्धों का खर्च उठाया जा सके। परिणामस्वरूप मराठा राज्य की आर्थिक स्थिति दिन-पर-दिन गम्भीर होती चली गई।**[2]

इसके विपरीत मराठा राज्य के प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी अंग्रेज सरकार की आय का साधन केवल कर ही नहीं था, वरन् उनका व्यापार भी इतना विशाल और लाभकारी था कि शासन तथा युद्धों का खर्च चलाकर भी कम्पनी सरकार को बहुत बचत होती थी। **अंग्रेजों की आर्थिक सुदृढ़ता तथा मराठा राज्य की आर्थिक निर्बलता भी मराठा राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण था।"**[3]

नाना का मूल्यांकन

नाना पर आरोप लगाया जाता है कि उनमें घोर अधिकार-लिप्सा थी। **वे राज्य के शासन-सूत्रों को सदा अपने ही हाथों में रखना चाहते थे।** अगर कभी कोई व्यक्ति, फिर वह मराठा राज्य का चाहे जितना बड़ा हितैषी रहा हो तथा राज्य के प्रति उसकी सेवाएं कितनी ही महत्वपूर्ण क्यों न रही हों, उनके मार्ग में बाधा बन जाता तो वह नाना का कोपभाजन बने बिना नहीं रहता था।

इसमें सन्देह नहीं कि नाना में अधिकार-लिप्सा अत्यन्त प्रबल रूप में थी। अगर कोई उनकी सत्ता को चुनौती दे बैठता तो उसे कुचलने में नाना कुछ भी कर सकते। साथ ही उनकी राज्य-हित की भावना भी अत्यन्त बलवती थी। नाना के समय में मराठा राज्य चारों ओर से संकटों से घिरा था। नाना अनुभव करते थे कि इन संकटों से राज्य की नैया को पार लगाने की क्षमता केवल उन्हीं में है। उन्हें विश्वास था कि उनके हाथों से शासन-सूत्रों के जाते ही आन्तरिक संघर्ष तथा बाहरी आक्रमण इतने तीव्र हो जाएंगे कि उन्हें संभालना असम्भव हो जाएगा। वे यह भी अनुभव करते थे कि अंग्रेजों की आक्रामक नीति का सफलतापूर्वक प्रतिकार करने वाला अन्य कोई व्यक्ति मराठा राज्य में नहीं है। यह कौन कह सकता है कि नाना के इस आत्मविश्वास में यथार्थता न थी? नाना की योग्यता के सम्बन्ध में उस समय भी सर्वसाधारण लोगों की राय थी कि "**अत्यन्त योग्यता और निपुणता से एक साथ सब मोरचों पर अंग्रेजों को संभालने का काम नाना ही कर सकते थे।**" रामशास्त्री प्रभुणे ऐसे स्पष्ट और सत्यभाषी नाना को 'मन्त्र्युत्तम' कहकर उनको गौरवान्वित करते थे।

इसमें सन्देह नहीं कि नाना सदा सत्तारूढ़ बने रहने के जो प्रयत्न करते थे उसके पीछे अधिकार-लिप्सा होते हुए भी राज्य-हित की भावना भी उनमें प्रबल रूप से विद्यमान थी।[4]

1 हर्डीकर, **नाना फड़नवीस**, पृ. 312.
2 **पूर्वोक्त**, पृ. 315.
3 **वही।**
4 **वही**, पृ. 317.

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

थी । [illegible]
कई दिशाओं में अपना [illegible] रहा था । 1784 में उसने अराकान जीत लिया और वह आसाम को धमकी दे रहा था ।"

स्पष्ट है कि भारत में अंग्रेजी शक्ति को अपने पुराने शत्रु मराठों और टीपू के विरोधी का सामना करना था और पंजाब, नेपाल तथा बर्मा में उठते हुए संकटों से बचना था ।

लॉर्ड कार्नवालिस
(1786–1793)

वारेन हेस्टिंग्ज के वापस जाने के बाद लगभग डेढ़ वर्ष तक मैक फर्सन गवर्नर जनरल के पद पर रहा और तत्पश्चात् 1786 ई. में लॉर्ड कार्नवालिस गवर्नर जनरल बनकर आया । भारत में वह पहला गवर्नर जनरल था जिसे पिट्स इण्डिया

एक्ट के अधीन कार्य करना पड़ा। उसने कम्पनी के संचालकों से विशेष आवश्यकता पड़ने पर अपनी कौंसिल के निर्णयों को रद्द करने की शक्ति माँगी जो उसे 1786ई. के एक्ट के अनुसार दे दी गई।

कार्नवालिस उच्च वंश से सम्बन्धित था और उसका नैतिक स्तर बहुत ऊँचा था। धन-लोलुपता उसमें नहीं थी। वह एक वीर सेनापति भी था। ब्रिटिश सरकार का उसे पूर्ण समर्थन प्राप्त था और भारत में परिस्थितियाँ भी उसके अनुकूल थीं।

भारत में आते ही उसने सबसे पहले अपनी सुधार नीति आरम्भ की। लगभग प्रत्येक क्षेत्र में उसने महत्त्वपूर्ण सुधार किए।

कार्नवालिस के सुधार

कार्नवालिस के सुधारों को चार शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) शासन सम्बन्धी सुधार,

(2) न्याय सम्बन्धी सुधार,

(3) व्यापार सम्बन्धी सुधार,

(4) भूमि सम्बन्धी (बंगाल का स्थायी बन्दोबस्त) सुधार।

शासन सम्बन्धी सुधार—कार्नवालिस ने देखा कि कम्पनी के कर्मचारी भ्रष्टाचारी, उत्तरदायित्वहीन और धन-लोलुप थे। कम्पनी की सेना में अयोग्य व्यक्ति प्रवेश कर गए थे और पुलिस विभाग में भी अकर्मण्यता छाई हुई थी। इस दृष्टि से उसने निम्नलिखित उल्लेखनीय सुधार किए—

(1) कार्नवालिस ने कम्पनी के कर्मचारियों के वेतन बढ़ा दिए ताकि वे ईमानदारी से कार्य करें और रिश्वत आदि न लें।

(2) कम्पनी के कर्मचारियों के निजी व्यापार को बन्द कर दिया गया ताकि वे कम्पनी के प्रति कर्त्तव्यपरायण और वफादार रह सकें। कार्नवालिस ने भ्रष्टाचार को मिटाकर कम्पनी कर्मचारियों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास करने का प्रयत्न किया।

(3) कम्पनी के कुछ पदाधिकारियों की नियुक्ति सिफारिशों के आधार पर की जाती थी जिससे प्रथम तो प्रायः योग्य व्यक्ति नियुक्त नहीं हो पाते थे और दूसरे उनकी अनीतियों का भी विरोध नहीं हो पाता था। कार्नवालिस ने सिफारिशों के आधार पर नियुक्ति की प्रथा को बन्द कर दिया। अब योग्यता के आधार पर नियुक्तियाँ होने लगीं जिससे शासन प्रबन्ध में कुशलता आई और अधिकारियों का नैतिक स्तर ऊँचा रहने से भ्रष्टाचार की सम्भावना कम हो गई।

(4) कार्नवालिस ने सार्वजनिक सेवाओं के लिए, विशेषकर उच्च पदों के लिए, भारतीयों को अयोग्य और अविश्वसनीय समझा, अतः यह नियम बना दिया गया कि 500 पौण्ड वार्षिक से अधिक वेतन वाले पदों पर केवल यूरोपियनों की ही नियुक्ति की जाएगी।

(5) कम्पनी की सेना में योग्य व्यक्ति ही भरती हो सकें, इसके लिए उसने नियन्त्रण बोर्ड से समुचित व्यवस्था करने का विरोध किया, जिसके फलस्वरूप अब

Scanned with CamScanner

इंगलैण्ड में ही सैनिक बोर्ड की व्यवस्था करदी गई। अंग्रेज सैनिकों की संख्या में भी वृद्धि की गई।

(6) पुलिस विभाग में भी महत्त्वपूर्ण सुधार किए गए। इस विभाग का कार्य जमींदार लोग करते थे। कार्नवालिस ने यह व्यवस्था समाप्त कर दी। यह कार्य सरकारी कर्मचारियों को सौंप दिया गया। जिलों को कई छोटे-बड़े इलाकों (थाना) में विभक्त कर दिया गया और प्रत्येक थाने में एक दारोगा नियुक्त किया गया। दारोगाओं के ऊपर जिले में एक अन्य उच्च अधिकारी भी नियुक्त किया जाता था।

न्याय सम्बन्धी सुधार—कर्नवालिस ने न्याय व्यवस्था के क्षेत्र में वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा शुरू किए गए अधूरे कार्य को समाप्त किया। न्यायिक क्षेत्र में उसने ये सुधार कार्य किए—

(1) कम्पनी राज्य को 23 भागों में विभाजित किया गया और प्रत्येक जिले के लिए कलेक्टर की नियुक्ति की गई जो जिले का सर्वोच्च अधिकारी होता था।

(2) पहले कलेक्टरों को शासन और न्याय दोनों ही कार्य करने पड़ते थे, अतः शक्ति का दुरुपयोग होता था। कार्नवालिस ने इस पुरानी व्यवस्था को समाप्त कर शासन तथा न्याय का काम एक-दूसरे से पृथक् कर दिया। अब कलेक्टरों का कार्य केवल जिला-प्रशासन सम्भालना तथा लगान एकत्र करना था। न्याय-कार्य के लिए प्रत्येक जिले में जिला जज नियुक्त किए गए जो जिला अदालत के प्रधान होते थे और फौजदारी, दीवानी तथा लगान सम्बन्धी विवादों का फैसला करते थे।

(3) जिला जजों के नीचे भी छोटी-छोटी दीवानी और फौजदारी अदालतें स्थापित की गईं। इनमें मुन्सिफ और सदर अमीन छोटे-छोटे मुकदमों का फैसला करते थे।

(4) जिलों की अदालतों के ऊपर दीवानी मामलों के लिए कलकत्ता, ढाका, पटना और मुर्शिदाबाद में प्रान्तीय अदालतों व जिला अदालतों के निर्णय के विरुद्ध अपीलों की सुनाई होती थी। इनके ऊपर कलकत्ता में एक सदर दीवानी अदालत थी जो प्रान्तीय अदालतों के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनती थी। इनमें मूल रूप से मुकदमें लाए जा सकते थे अर्थात् ऐसे मुकदमें जिन्हें छोटे न्यायालयों में ले जाने की आवश्यकता नहीं होती थी।

फौजदारी मामलों के लिए भी इसी प्रकार चार प्रान्तीय अदालतें थीं और इनके ऊपर कलकत्ता में सदर निजामत अदालत थी जिसमें फौजदारी मुकदमों में प्रान्तीय अदालतों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुनी जाती थीं।

अपील के सर्वोच्च न्यायालय में गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल के सदस्य न्यायाधीश का कार्य करते थे।

(5) कार्नवालिस ने कठोर और बर्बर दण्ड हटा दिए।

(6) कानूनों का एक विस्तृत संग्रह तैयार कराया गया जिसे 'कार्नवालिस कोड' की संज्ञा दी गई।

Scanned with CamScanner

(7) कार्नवालिस ने वकालात के व्यवसाय को भी नियमित करने के लिए यह व्यवस्था की कि भविष्य में वकील सरकार द्वारा निर्धारित फीस ही ले सकेंगे और इस नियम का उल्लंघन करने पर उन्हें अयोग्य घोषित किया जा सकेगा।

(8) कार्नवालिस के आने से पूर्व नियमों को प्रकाशित करने की व्यवस्था ठीक नहीं थी, अतः यह निश्चित करना प्रायः कठिन हो जाता था कि "देश का वास्तविक कानून क्या है। कार्नवालिस ने इस कठिनाई को दूर करने के लिए यह नियम बनाया कि भविष्य में जो भी आज्ञाएँ व नियम आदि किसी वर्ष निर्धारित हों, उन्हें प्रकाशित किया जाए और उनकी एक जिल्द बना दी जाए।"

(9) कार्नवालिस ने अदालती अधिकारियों के पदों के लिए अच्छे वेतनों का प्रावधान किया ताकि अधिकारी रिश्वत लेने की ओर आकर्षित न हों और न्याय-विभाग में योग्य तथा चरित्रवान् व्यक्तियों के लिए आकर्षण हो।

न्याय के क्षेत्र में कार्नवालिस ने जो सुधार किए, उनके कारण उसे आधुनिक भारतीय न्याय-व्यवस्था का जन्मदाता कहा जाता है।

व्यापार सम्बन्धी सुधार—कार्नवालिस ने व्यापार के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण सुधार किए—

(1) नौकरों के हेतु माल खरीदने के लिए ठेके की प्रथा को बन्द कर दिया गया। माल खरीदने का काम भारतीय व्यापारियों को सौंप दिया गया तथा कम्पनी के कर्मचारियों को केवल कमीशन एजेण्ट बना दिया गया।

(2) अभी तक भारतीय जुलाहे कम्पनी के कर्मचारियों के अतिरिक्त अन्य किसी को किसी भी सूरत में कपड़ा नहीं बेच सकते थे। कार्नवालिस ने यह नियम बना दिया कि जितना धन जुलाहों को पेशगी के रूप में दिया जाएगा उतना ही माल जुलाहे कम्पनी में कर्मचारियों के हाथ बेचेंगे।

(3) 1774 ई. में कम्पनी के व्यापार को उन्नत बनाने के लिए जो 11 सदस्यीय बोर्ड ऑफ ट्रेड बनाया गया था, उसके सदस्यों की संख्या घटाकर 5 कर दी गई तथा बोर्ड को कलकत्ता कौंसिल के नियन्त्रण में रख दिया गया।

भूमि-कर सुधार और स्थायी बन्दोबस्त (Permanent Settlement)—कार्नवालिस सबसे अधिक विख्यात अपने भूमि सम्बन्धी सुधारों के कारण हुआ। भारत में यह उनका सबसे स्थायी सुधार था। कार्नवालिस की नियुक्ति के समय किसानों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी और कम्पनी की लगान-व्यवस्था बहुत दोष-पूर्ण थी। उसने इन दोषों को दूर करने के लिए 'स्थायी बन्दोबस्त' (Permanent Settlement) की व्यवस्था आरम्भ की। कार्नवालिस जब भारत आया तो भूमि सम्बन्धी व्यवस्था इस प्रकार थी—

(1) किसानों को भूमि पर खेती करने का कर सरकार को देना पड़ता था।

(2) वार्षिक प्रबन्ध की व्यवस्था प्रचलित थी। वारेन हेस्टिंग्ज ने पहले पंचवर्षीय प्रबन्ध व्यवस्था चालू की थी जिसके अन्तर्गत भूमि नीलाम करके सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को 5 वर्ष के लिए लगान वसूली का ठेका दे दिया जाता

था। पर ठेकेदार बोली बोलते समय
उतनी धन-राशि कम्पनी के कोष में ज
स्थान पर वार्षिक प्रबन्ध चालू किया ग
लिए नीलाम किए गए, पर इस परिव
नए-नए व्यक्ति लगान वसूल करने में
दोनों को घाटा होता रहा और कृषि
हुआ। कार्नवालिस की नियुक्ति के स
स्पष्ट हो चुके थे।

कार्नवालिस ने उपर्युक्त दोषों
की दशा सुधारने के लिए जो नई पद्ध
nent Settlement) कहा गया। स
स्वतन्त्र होने के समय तक चालू र
स्थायित्व लाना था। इस व्यवस्था के
निश्चित मालगुजारी के आधार पर
और सुविधापूर्ण रहेगा।

इंग्लैण्ड में कम्पनी के उ
बन्दोबस्त-व्यवस्था चालू करने की अ
में जमींदारों के साथ लगान सम्बन्धी
बाद में इस व्यवस्था को स्थायी कर
वर्षीय बन्दोबस्त लागू करने की घो
दिया गया कि संचालक मण्डल की
बना दिया जाएगा। 1793 ई. में
21 मार्च, 1793 से स्थायी बन्दोब

कार्नवालिस से पूर्व जमींदा
बन्दोबस्त व्यवस्था के द्वारा किसा
लिया गया। कम्पनी का भूमि-कर
किसानों के बजाय जमींदारों से व
को देना था वह हमेशा के लिए
की जा सकती थी तथा जब तक
भूमि छीनी नहीं जा सकती थी।
पड़ता था, वह भी पट्टे द्वारा नि
उसमें यह वृद्धि नहीं की जा सक

स्थायी बन्दोबस्त की व्य
इसने एक सामाजिक क्रान्ति
भारतीय समाज में राजा, तालुके
गई जो तेजी से सम्पूर्ण समाज

Scanned with CamScanner

था। पर ठेकेदार बोली बोलते समय इतनी ऊँची रकम बोल देते थे कि बाद में उतनी धन-राशि कम्पनी के कोष में जमा नहीं करा पाते थे, अतः इस व्यवस्था के स्थान पर वार्षिक प्रबन्ध चालू किया गया जिसमें लगान वसूली के ठेके एक वर्ष के लिए नीलाम किए गए, पर इस परिवर्तन से स्थिति और भी बिगड़ गई। हर वर्ष नए-नए व्यक्ति लगान वसूल करने में अयोग्य सिद्ध होने लगे। किसानों और कम्पनी दोनों को घाटा होता रहा और कृषि योग्य भूमि की उत्पादन क्षमता का ह्रास हुआ। कार्नवालिस की नियुक्ति के समय तक इस वार्षिक व्यवस्था के गम्भीर दोष स्पष्ट हो चुके थे।

कार्नवालिस ने उपर्युक्त दोषों को दूर करने के लिए और किसानों व कम्पनी की दशा सुधारने के लिए जो नई पद्धति चालू की उसे 'स्थायी बन्दोबस्त' (Permanent Settlement) कहा गया। स्थायी बन्दोबस्त की यह व्यवस्था भारत के स्वतन्त्र होने के समय तक चालू रही। इसका मूल उद्देश्य लगान-व्यवस्था में स्थायित्व लाना था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत यह सोचा गया कि बंगाल में एक निश्चित मालगुजारी के आधार पर स्थायी बन्दोबस्त करना ही सर्वाधिक लाभदायक और सुविधापूर्ण रहेगा।

इंग्लैण्ड में कम्पनी के उच्च अधिकारियों ने कार्नवालिस को स्थायी बन्दोबस्त-व्यवस्था चालू करने की अनुमति दे दी। यह आदेश दिया गया कि प्रारम्भ में जमींदारों के साथ लगान सम्बन्धी बन्दोबस्त 10 वर्ष के लिए किया जाए और बाद में इस व्यवस्था को स्थायी कर दिया जाए। अतः 10 फरवरी, 1790 को दस वर्षीय बन्दोबस्त लागू करने की घोषणा कर दी गई। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि संचालक मण्डल की अनुमति मिल जाने पर इस बन्दोबस्त को स्थायी बना दिया जाएगा। 1793 ई. में ही कार्नवालिस को अनुमति प्राप्त हो गई और 21 मार्च, 1793 से स्थायी बन्दोबस्त लागू कर दिया गया।

कार्नवालिस से पूर्व जमींदार भूमि के मालिक नहीं समझे जाते थे। स्थायी बन्दोबस्त व्यवस्था के द्वारा किसानों के बजाय जमींदारों को भूमि का स्वामी मान लिया गया। कम्पनी का भूमि-कर (लगान) निश्चित कर दिया गया और इसको किसानों के बजाय जमींदारों से वसूल करना शुरू किया गया। जो लगान जमींदारों को देना था वह हमेशा के लिए निश्चित कर दिया गया। उसमें कमी-बेशी नहीं की जा सकती थी तथा जब तक जमींदार निश्चित लगान देता रहे तब तक उसकी भूमि छीनी नहीं जा सकती थी। किसानों को जो कर अपने जमींदारों को देना पड़ता था, वह भी पट्टे द्वारा निश्चित कर दिया गया। न्यायिक स्वीकृति के बिना उसमें वह वृद्धि नहीं की जा सकती।

स्थायी बन्दोबस्त की व्यवस्था देखने में शुद्ध आर्थिक व्यवस्था थी, लेकिन इसने एक सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात किया। इस व्यवस्था के फलस्वरूप भारतीय समाज में राजा, तालुकेदार और जमींदारों की एक नई श्रेणी उत्पन्न हो गई जो तेजी से सम्पूर्ण समाज पर छा गई।

Scanned with CamScanner

था। पर ठेकेदार बोली बोलते समय इतनी ऊँची रकम बोल देते थे कि बाद में उतनी धन-राशि कम्पनी के कोष में जमा नहीं करा पाते थे, अतः इस व्यवस्था के स्थान पर वार्षिक प्रबन्ध चालू किया गया जिसमें लगान वसूली के ठेके एक वर्ष के लिए नीलाम किए गए, पर इस परिवर्तन से स्थिति और भी बिगड़ गई। हर वर्ष नए-नए व्यक्ति लगान वसूल करने में अयोग्य सिद्ध होने लगे। किसानों और कम्पनी दोनों को घाटा होता रहा और कृषि योग्य भूमि की उत्पादन क्षमता का ह्रास हुआ। कार्नवालिस की नियुक्ति के समय तक इस वार्षिक व्यवस्था के गम्भीर दोष स्पष्ट हो चुके थे।

कार्नवालिस ने उपर्युक्त दोषों को दूर करने के लिए और किसानों व कम्पनी की दशा सुधारने के लिए जो नई पद्धति चालू की उसे 'स्थायी बन्दोबस्त' (Permanent Settlement) कहा गया। स्थायी बन्दोबस्त की यह व्यवस्था भारत के स्वतन्त्र होने के समय तक चालू रही। इसका मूल उद्देश्य लगान-व्यवस्था में स्थायित्व लाना था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत यह सोचा गया कि बंगाल में एक निश्चित मालगुजारी के आधार पर स्थायी बन्दोबस्त करना ही सर्वाधिक लाभदायक और सुविधापूर्ण रहेगा।

इंग्लैण्ड में कम्पनी के उच्च अधिकारियों ने कार्नवालिस को स्थायी बन्दोबस्त-व्यवस्था चालू करने की अनुमति दे दी। यह आदेश दिया गया कि प्रारम्भ में जमींदारों के साथ लगान सम्बन्धी बन्दोबस्त 10 वर्ष के लिए किया जाए और बाद में इस व्यवस्था को स्थायी कर दिया जाए। अतः 10 फरवरी, 1790 को दस वर्षीय बन्दोबस्त लागू करने की घोषणा कर दी गई। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि संचालक मण्डल की अनुमति मिल जाने पर इस बन्दोबस्त को स्थायी बना दिया जाएगा। 1793 ई. में ही कार्नवालिस को अनुमति प्राप्त हो गई और 21 मार्च, 1793 से स्थायी बन्दोबस्त लागू कर दिया गया।

कार्नवालिस से पूर्व जमींदार भूमि के मालिक नहीं समझे जाते थे। स्थायी बन्दोबस्त व्यवस्था के द्वारा किसानों के बजाय जमींदारों को भूमि का स्वामी मान लिया गया। कम्पनी का भूमि-कर (लगान) निश्चित कर दिया गया और इसको किसानों के बजाय जमींदारों से वसूल करना शुरू किया गया। जो लगान जमींदारों को देना था वह हमेशा के लिए निश्चित कर दिया गया। उसमें कमी-बेशी नहीं की जा सकती थी तथा जब तक जमींदार निश्चित लगान देता रहे तब तक उसकी भूमि छीनी नहीं जा सकती थी। किसानों को जो कर अपने जमींदारों को देना पड़ता था, वह भी पट्टे द्वारा निश्चित कर दिया गया। न्यायिक स्वीकृति के बिना उसमें वृद्धि नहीं की जा सकती।

स्थायी बन्दोबस्त की व्यवस्था देखने में शुद्ध आर्थिक व्यवस्था थी, लेकिन इसने एक सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात किया। इस व्यवस्था के फलस्वरूप भारतीय समाज में राजा, तालुकेदार और जमींदारों की एक नई श्रेणी उत्पन्न हो गई जो तेजी से सम्पूर्ण समाज पर छा गई।

Scanned with CamScanner

स्थायी बन्दोबस्त की व्यवस्था को लॉर्ड कार्नवालिस ने बहुत सोच-विचार और धैर्य के बाद लागू करने का निश्चय किया। इसके चालू करने के दो मुख्य कारण थे—प्रथम, मनोवैज्ञानिक कारण यह था कि कार्नवालिस इंग्लैण्ड की जमींदारी प्रथा से बहुत प्रभावित था और भारत की सामाजिक तथा आर्थिक समस्या का समाधान करते समय उसका व उसके जैसे लोगों का विचार यही रहा कि किसानों को नियन्त्रण में रखने और सरकार के अर्थ-संग्रह को सुदृढ़ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि भारत में भी एक शक्तिशाली जमींदार श्रेणी कायम की जाए। दूसरा बड़ा कारण यह था कि अंग्रेज अफसर हर वर्ष लगान वसूली की नित नई व्यवस्थाओं से तंग आ गए थे। इससे कम्पनी की आय में अनिश्चितता थी, अतः भूमि की लगान व्यवस्था का स्थायी बन्दोबस्त कर देना ठीक समझा गया।

स्थायी बन्दोबस्त के गुण—स्थायी बन्दोबस्त की इस व्यवस्था के फलस्वरूप बंगाल के किसानों की दशा पहले से बहुत अच्छी हो गई। खेत लहलहाने लगे। कृषि की सम्पन्नता का अनुकूल प्रभाव व्यापार और उद्योग पर भी पड़ा। कृषि और व्यापार के विकास के फलस्वरूप बंगाल ब्रिटिश साम्राज्य का सबसे सम्पन्न प्रान्त बन गया। अकाल के प्रकोप से भी बंगाल को राहत मिली। जब आर्थिक सम्पन्नता आई तो साहित्य और कला की भी अभिवृद्धि हुई। इस प्रकार बंगाल में शिक्षा और संस्कृति के प्रचार-प्रसार का मार्ग प्रशस्त हो गया।

स्थायी बन्दोबस्त से कम्पनी सरकार को बहुत लाभ हुआ। राजनीतिक लाभों ने अंग्रेजों के लिए इस बन्दोबस्त को बहुत महत्त्वपूर्ण बना दिया। जमींदार जो भूमि के स्वामी बन गए, अंग्रेजों के कृपाकांक्षी हो गए और विद्रोह के समय अंग्रेज सरकार के भक्त बने रहे। अंग्रेजों की कृपा से उनकी एक श्रेणी बन गई जो बिना परिश्रम के प्रचुर धन कमाने लगी।

समय बीतने पर जो जमींदार अमीर हो गए उन्होंने उद्योग तथा व्यापार में धन लगाना शुरू किया। यद्यपि सरकार भविष्य में मालगुजारी न बढ़ा सकी, तथापि उद्योग और व्यापार के समुन्नत होने से अन्य कर लगा कर इन लोगों से सरकार ने काफी धन वसूल किया। साथ ही स्थायी बन्दोबस्त परोक्ष रूप में भारतीय व्यवस्था को आधुनिक बनाने में सहायक बना।

स्थायी बन्दोबस्त से कम्पनी सरकार प्रति वर्ष लगान निश्चित करने की झंझटों से मुक्त हो गई। बार-बार बन्दोबस्त करने में धन का जो अपव्यय होता था, वह बच गया। अब कम्पनी को वार्षिक नीलामियों के परिणामों की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं रही। सरकार की आय निश्चित हो गई और उसे पता चल गया कि भूमि के लगान से उसे कितनी आमदनी होगी। आय की सुनिश्चितता के कारण आर्थिक योजनाओं के निर्माण में भी निश्चितता और सुविधा प्राप्त हो गई। यदि जमींदार समय पर लगान अदा न कर पाते तो उनकी भूमि का कुछ भाग बेच कर रुपया वसूल कर लिया जाता था।

स्थायी बन्दोबस्त हो जाने से वार्षिक बन्दोबस्त में लगे हुए सरकारी

कर्मचारियों की एक बड़ी संख्या शासन सम्बन्धी
जिसके फलस्वरूप शासन-कार्य में तेजी और व्य

इस व्यवस्था से किसानों को भी लाभ
वसूल किया जाता था और इसके लिए उन प
थे। अब इन अत्याचारों से उन्हें बहुत कुछ रा
जमींदारों को दिए जाने वाले लगान पट्टे द्वा

स्थायी बन्दोबस्त के फलस्वरूप कम्पनी
गई। एक बड़ा लाभ यह हुआ कि जहाँ पहले
कम दिखाने के लिए काफी भूमि बिना जुती
मालगुजारी स्थायी रूप से निश्चित हो जाने
भूमि भी कृषि-योग्य बनाई जाने लगी
बढ़ गया।

आर. सी. दत्त के मतानुसार भारत
बन्दोबस्त सबसे अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण औ
आर्थिक सुरक्षा भी हो गई। मार्शमैन
बुद्धिमत्तापूर्ण उपाय था जिसके फलस्वरूप
हुआ और लोगों की आदतों तथा रहन-सह

स्थाई बन्दोबस्त के दोष—स्थायी
सिद्ध हुआ—

(1) स्थायी बन्दोबस्त करते स
जिससे लगान की दर कम निश्चित की
क्षति पहुँची।

(2) इस व्यवस्था का वास्तवि
दशा इतनी उन्नत न हो सकी जितनी
सरकार को देते थे, उससे अनेक गुना अ
किसान उनका विरोध करने योग्य न थे

(3) ब्रिटिश सरकार ने जि
बन्दोबस्त लागू किया, किन्तु इन दूसरे
फलस्वरूप वहाँ जमींदारों व किसानों

(4) ब्रिटिश सरकार को आ
होने से कम्पनी की आय बहुत अधिक
हुई। जब सरकार को यह अनुभव हु
वसूल करते हैं उसका अल्पांश ही उन
है, तो सरकार को वास्तविक स्थिति
बंगाल प्रान्त के लिए केवल 3 करो
एक अनुमान के अनुसार किसानों से
जा रहे थे। इसके अतिरिक्त भविष्य

Scanned with CamScanner

कर्मचारियों की एक बड़ी संख्या शासन सम्बन्धी दूसरे कार्यों के लिए मुक्त हो गई जिसके फलस्वरूप शासन-कार्य में तेजी और व्यवस्था आई।

इस व्यवस्था से किसानों को भी लाभ पहुँचा। पहले उनसे मनमाना लगान वसूल किया जाता था और इसके लिए उन पर तरह-तरह के अत्याचार ढाए जाते थे। अब इन अत्याचारों से उन्हें बहुत कुछ राहत मिल गई क्योंकि उनके द्वारा जमींदारों को दिए जाने वाले लगान पट्टे द्वारा निश्चित कर दिए गए।

स्थायी बन्दोबस्त के फलस्वरूप कम्पनी की आय पूर्वापेक्षा बहुत अधिक बढ़ गई। एक बड़ा लाभ यह हुआ कि जहाँ पहले सरकारी बन्दोबस्त के समय उपज कम दिखाने के लिए काफी भूमि बिना जुती-बोई छोड़ दी जाती थी, वहाँ अब मालगुजारी स्थायी रूप से निश्चित हो जाने के कारण बंजर और बिना जुती हुई भूमि भी कृषि-योग्य बनाई जाने लगी जिसके कारण खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ गया।

आर. सी. दत्त के मतानुसार भारत में अंग्रेजों के समस्त कार्यों में स्थायी बन्दोबस्त सबसे अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण और सफल कार्य था। इससे जनता की आर्थिक सुरक्षा भी हो गई। मार्शमैन' के अनुसार यह बड़ा साहसिक और बुद्धिमत्तापूर्ण उपाय था जिसके फलस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि हुई, कृषि का विस्तार हुआ और लोगों की आदतों तथा रहन-सहन में सुधार हुआ।

स्थाई बन्दोबस्त के दोष—स्थायी बन्दोबस्त अनेक दृष्टियों से दोषपूर्ण भी सिद्ध हुआ—

(1) स्थायी बन्दोबस्त करते समय भूमि का ठीक माप नहीं हो सका जिससे लगान की दर कम निश्चित की गई। फलस्वरूप सरकारी आय को काफी क्षति पहुँची।

(2) इस व्यवस्था का वास्तविक लाभ जमींदारों को हुआ। किसानों की दशा इतनी उन्नत न हो सकी जितनी उन्नत होनी चाहिए। जमींदार जो लगान सरकार को देते थे, उससे अनेक गुना अधिक कृषकों से प्राप्त करते थे। अशिक्षित किसान उनका विरोध करने योग्य न थे, अतः जमींदारों के अत्याचार सहते रहे।

(3) ब्रिटिश सरकार ने जिन-जिन प्रदेशों को जीता वहाँ भी स्थायी बन्दोबस्त लागू किया, किन्तु इन दूसरे प्रदेशों में लगान की दर बढ़ा दी गई। फलस्वरूप वहाँ जमींदारों व किसानों को अधिक कष्ट उठाना पड़ा।

(4) ब्रिटिश सरकार को आशा थी कि स्थायी बन्दोबस्त की व्यवस्था लागू होने से कम्पनी की आय बहुत अधिक बढ़ जाएगी, लेकिन यह आशा भी पूरी नहीं हुई। जब सरकार को यह अनुभव हुआ कि जमींदार किसानों से जितना लगान वसूल करते हैं उसका अल्पांश ही उन्हें सरकार को मालगुजारी के रूप में देना पड़ता है, तो सरकार को वास्तविक स्थिति का पता चला। सरकारी मालगुजारी सम्पूर्ण बंगाल प्रान्त के लिए केवल 3 करोड़ रुपये वार्षिक निश्चित की गई थी जबकि एक अनुमान के अनुसार किसानों से लगभग 13 करोड़ रुपये वार्षिक वसूल किए जा रहे थे। इसके अतिरिक्त भविष्य में कृषि-योग्य भूमि का क्षेत्रफल बढ़ता रहा